# Navchetana Homilies

## Feb 10, 2019

Deut 24: 14-22

Is 63: 7-16

Heb 8: 1-6

Jn 3: 22-31

## प्रकटीकरण काल का छटवाँ रविवार

## वह बढ़ते जायें

डॉ. स्पेनसर एक प्रतिभा संपन्न एग्लिकेन पुरोहित थे और एक कुशल वक्ता भी। उनका प्रवचन सुनने के लिए दूर–दूर से लोग आते थे, और जब भी वे भाषण देते थे चर्च पूरा भरा रहता था। कई साल बीतने के बाद उसकी विचारधारा अप्रासंगिक और भाषण शैली पुरानी हो गई। उसी बीच सड़क के उस पार थोड़ी दूर पर एक प्रार्थना–भवन में एक नये पुरोहित आये थे। जिनकी बाइबिल व्याख्या आधुनिक थी, और शैली में भी एक नयापन और ताजापन था। उनके प्रवचन ने लोगों को आकर्षित किया। लोग उनकी ओर निरंतर जाने लगे। इसी समय एक बार वहाँ डॉ. स्पेन्सर फिर भाषण देने आये। भाषण करते समय उन्होंने प्रार्थना भवन में जब नज़र

दौड़ायी तो देखा कि लोगों की अपस्थिति बहुत कम है। उन्होंने वेदी सेवक से पूछा– "कहाँ गये सब लोग?"

थोड़े संकोच के साथ वेदी सेवक ने उनसे कहा– "सड़क के उस पार के चर्च में एक नये पुरोहित आये हैं। लोग उनको सुनने गये हैं।"

डॉ. स्पेन्सर पल भर के लिए विचार मग्न हो उठे। उन्होंने कहा "तो, उधर कुछ भलाई जरूर होगी, चलो हम भी उधर जायेंगे।" वह प्रवचन पीठ से उतरे और चर्च में जितने लोग उपस्थित थे उनको भी बुलाकर नये पुरोहित को सुनने के लिये चलने को कहा।

यह रही डॉ. स्पेन्सर की प्रतिक्रिया। कोई और होता तो प्रतिक्रिया कुछ और होती। यदि उनके स्थान पर कोई दूसरा उपदेशक होता तो वह गुस्से में सबको डांटते हुए जरूर कहता "इतने साल से मैं तुम लोगों को उपदेश देता और सही रास्ता दिखलाता आ रहा हूँ। अब कोई दूसरा नया उपदेशक आ गया तो तुम सभी उसके पीछे भाग गए। अब तुम लोगों को मैं कोई भाषण नहीं दे सकता क्या?" और क्रोध से वे वेदी छोड़कर चले जाते और नये पुरोहित के विरूद्ध षड़यंत्र भी करते पर उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया। क्योंकि यदि वे ऐसा करते तो उनके जिन्दगी भर के प्रवचन का फल एक ही पल में नष्ट हो

जाता। सचमुच डॉ. स्पेन्सर का यह व्यवहार उनके सारे प्रवचनों को सार्थक बनाता है।

ऐसी ही एक स्थिति योहन के सामने थी। योहन के शिष्यों ने आकर उनसे कहा "गुरूजी! देखिये, आपने जिनके विषय में साक्ष्य दिया था वह यर्दन के उस पार उपदेश दे रहे हैं, और लोग उनको सुनने उधर गये है।" उनका संकेत येसु के प्रति था। योहन ने अपने शिष्यों से कहा– "यही उचित समय है। मैंने कहा था मैं मसीह नहीं हूँ, उनका अग्रदूत हूँ। अब मेरा आनन्द पूरा हो गया है। यही अच्छा है कि वे बढ़ते जायें और मैं घटता जाऊँ।"

योहन को मालूम था कि वे कौन हैं? और उसका कर्त्तव्य क्या है? इसलिए उसे किसी दूसरे की श्रेष्ठता स्वीकारने में कोई संकोच नहीं था। अपना कर्त्तव्य सही ढंग से पूरा करके वह संतुष्ट था।

ईर्ष्यायुक्त मनुष्य के हृदय में सदैव जलन और दुःख बने रहते हैं। ईर्ष्यालु मनुष्य स्वयं ही ईर्ष्याग्नि में जला करता है, और दूसरों को भी जलाता है। यह गलतफहमियों की एक गर्म हवा है जो शरीर के अंदर 'लू' की तरह चलती है और मानसिक शक्तियों को झुलसाकर राख बना देती है।

कुछ साल पहले मैंने एक तेलगु फिल्म देखी थी "प्रणवम"। उसका प्रमुख पात्र एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ था जिसे लोग

आधुनिक "स्वातितिरून्नाल" या स्वातितिरून्नाल से महान गायक कहकर पुकारते थे। उसकी संगीत सभाओं को सुनना लोग बहुत बड़ा सौभाग्य समझते थे। जब उसके मुख से राग–रागिनियाँ निकलती थीं तो सुनने वालों को अपार आनन्द की अनुभूति होती थी। अचानक एक दिन एक गरीब बालक उसका शिष्य बनने के लिए उसके पास आता है। वे उसे शिष्य बनाने को तैयार नहीं होते। बाद में उस बालक के माता–पिता के आग्रह करने पर वे उस बालक के संगीत को सुनने को तैयार हो जाते हैं। जैसे ही वह बालक गीत प्रारंभ करता है सभी बैठे लोग मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। संगीत के गुरू की पत्नी उसे शिष्य के रूप में घर ले आना चाहती है पर गुरू के मन में ईर्ष्या जन्म ले लेती है। वे उसे शिष्य के रूप में स्वीकारने को तैयार नहीं होते।

कुछ ही दिनों में वह बालक संगीत विद्या में पारंगत होकर संगीत सभाओं को सुशोभित करने लगता है। उसकी प्रतिभा सम्पन्नता और निपुणता को देखकर उसे सरस्वती मठ के शंकराचार्य कई कीर्तनों को संगीतबद्ध करने का काम सौंपते है। इस कार्य को पहले संगीत आचार्य करते थे। उसके कीर्तनों को संगीतबद्ध करने में आचार्य से मदद मिलेगी, ऐसा सोचकर गुरू पत्नी उसे अपने घर ले आती है। सच तो यह है कि गुरू पत्नी को उस बालक के प्रति बड़ा वात्सल्य भी था। बालक उन कीर्तनों को एक–एक करके संगीत से संजोने का

काम शुरू करता है। उससे संगीतबद्ध धुन को सुनकर संगीत आचार्य भी आश्चर्यचकित रह जाते हैं पर कभी उसकी सराहना नहीं करते, और हमेशा उसे घटिया संगीतकार कहकर अस्वीकार करते रहते हैं।

तब भी उस निष्कलंक के मन में गुरू के प्रति सम्मान और आदर का भाव ही रहता है। वह सदैव अधिक प्रयत्न करके अच्छा से अच्छा संगीत देने की कोशिश करता रहता है। संगीत आचार्य उस बालक द्वारा किए गए संगीतबद्ध कीर्तनों को अपने नाम से प्रचारित कर शंकराचार्य से पुरस्कार और लोगों की तारीफ बटोरता रहता है। इतना कर लेने के बावजूद भी बालक की प्रतिभा आचार्य के लिए असहनीय हो जाती है। इसलिए वह उस बालक को मार डालना चाहता है।

गुरू की इच्छा को जानकर वह बालक स्वयं आत्महत्या कर लेता है। आत्महत्या के पहले गुरू पत्नी को एक पत्र लिखता है– "माता जी मैंने आपसे एक माता जैसा ही वात्सल्य और प्रेम पाया। आपका और गुरूजी का मैं हृदय से आदर करता हूँ, प्रेम करता हूँ। मेरे कारण गुरू पर हत्या का अभियोन न लगे इसलिए मैं आत्महत्या कर रहा हूँ।" गुरू पत्नी इस पत्र को पढ़कर पागल हो जाती है। इसी अवस्थ में वह लोगों से पूछती है "इसकी हत्या किसने की?" वह उसके गुरू और

अपने पति की ओर इशारा करके कहती है– "इस गुरू ने या ऊपर वाले गुरू ने?"

ईर्ष्या स्वयं को नहीं, पूरे परिवार को जलाकर राख कर देता है। ईर्ष्यालु स्वयं अपनी ईर्ष्या में जलता है और दूसरों को भी जलाता है। हिन्दी कथाकार जैनेन्द्रजी कहते हैं– "ईर्ष्या अपनी हीनता के बोध से जन्म लेती है और वह हीनता को दूर नहीं करती सिर्फ दबाती है।" सचमुच दूसरों के गुण और खुबियाँ जिस व्यक्ति के लिए असहनीय हो जाते हैं वे ही ईर्ष्यालु कहलाते हैं। निस्सहाय होने से मन में हीनता का बोध उसके लिए और दूसरों के लिए नरक का सृजन करता है। किसी को भी बढ़ने न देने की मनोस्थिती हमें अपनी ऊँचाईयों से भी गिरा देती है।

अलसीबिड़स दार्शनिक सुकरात का मित्र था। वह एक प्रतिभा सम्पन्न और समर्थ व्यक्ति था, पर कुमार्ग पर चलने वाला था। इसलिए सुकरात की भलाई उससे सही नहीं जाती थी। वह सुकरात से कहा करता था– "सुकरात; मैं तुम से घृणा करता हूँ। तुझे देखते समय मैं कितना बुरा हूँ वह अहसास मुझमें घृणा का भाव गहरा कर देता है जो मेरे चैन को नष्ट कर देता है।"

भले लोगों की निन्दा करना, उनके नेक विचारों पर कलंक का आरोप करना हमारी ही बुराई का प्रतिबिंब है। ईर्ष्या हमें

अपने ही लक्ष्यों और कर्त्तव्यों से वंचित कर देती है। यही नहीं वह हमारी शांति को भी नष्ट कर देती है।

जब हम दूसरों के गुणों को स्वीकृति प्रदान करते हैं तो इससे वे भी बढ़ते है और हम भी। ऐसा करने से व्यक्ति को मन की शांति मिलती है। योहन के कहे गए वाक्य "वह बढ़ते जाये" में दूसरों के गुणों को स्वीकृति देने की ही बात कही गई है। इससे व्यक्ति दूसरे को महान बनाता है और स्वयं भी महान बनता है।

Fr. James ML CMI